

अन्तिम दो दशक का उर्दू - उपन्यास : एक विहंगम दृष्टि

डॉ० इशरत बी० खान

समर्थ और सशक्त विधा के रूप में उपन्यास का अपना एक अलग वैशिष्ट्य है। जीवन की जटिलताओं, उसके विस्तार एवं विकास की अनन्त संभावनाओं के घरातल पर उपन्यास ने धूप-छाँही रंगों के अनेक चित्र बिखेरते हुए मानवीय जीवन से गहरी संपृक्ति और नये सामाजिक सरोकार भी प्रदान किए हैं। वस्तुतः आधुनिक युग में उपन्यास, युगीन मानव की संवेदनाओं के प्रामाणिक दस्तावेज के रूप में उभरा है।

उर्दू उपन्यास का प्रारम्भ 1857 से माना जाता है। दरअसल इस समय भारत में सामन्तीय परम्परा में कविता की ही गूँज सुनाई पड़ती थी और यहाँ साहित्य का विकास अमरीका और इंग्लैंड की भाँति नहीं हुआ था। उर्दू भाषा में लम्बे समय से उपन्यासों का अभाव खल रहा था। बीसवीं शती के अन्तिम दो दशकों के उर्दू उपन्यासों पर विचार करने से पूर्व इसके पहले के उपन्यासों का एक जायज़ा ले लिया जाए।

उर्दू उपन्यास-साहित्य में प्रथम उपन्यासकार के रूप में मौलवी नज़ीर अहमद का नाम लिया जा सकता है। उनके 'मिरातुल उरूस' (1869) को उर्दू का प्रथम उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है जिसमें मुस्लिम महिलाओं की समस्याओं को चित्रित करते हुए उनमें सुधार लाने की प्रबल भावना निहित है। इसके अतिरिक्त मौलाना फ़ैज़ी का 'तलिस्म होशरुबा'¹, पं० रतननाथ सरशार का 'फ़साना-ए-आज़ाद' (1878) उपन्यास बहुत चर्चित रहे। कुछ समय पश्चात मिर्ज़ा हादी रूसवा ने 'उमरावजान अदा' (1899) की सर्जना की। इससे उर्दू-उपन्यास को व्यापक क्षितिज मिला और शिल्प के स्तर पर एक नवीन क्रान्ति हुई। इस प्रकार उर्दू उपन्यास की दुनिया में नवीन संभावनाओं के द्वार खुल गए।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में उर्दू-उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र के रूप में एक ऐसा बड़ा नाम मिलता है। जिसने सामाजिक एवं राजनीतिक यथार्थ, लक्ष्य गाम्भीर्य, हृदयंगम भाषा को उस बुलन्दी तक पहुँचा दिया जहाँ तक उनके बाद कोई उपन्यासकार न पहुँच सका। इसी समय सज़ाद जहीर ने पहला उपन्यास 'लन्दन की एक रात' (1939) लिखा।

भारतीय इतिहास में सन् 1947 से एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। आज़ादी के बाद बदलते परिवेशगत दबावों के फलस्वरूप भारतीय समाज को साम्प्रदायिक-उन्माद, विभाजन की त्रासदी, हिंसा, बलात्कार, शरणार्थियों की समस्या आदि न जाने कितने संकटों का सामना करना पड़ा। हिन्दी की भाँति इसकी अनुगूँज उर्दू उपन्यासों में भी बराबर सुनाई दी जिसे कि 'आग का दरिया' (1959), ('कुर्रतुल - ऐन - हैदर'), 'मिट्टी के सनम' 1966, 'एक गधे की सरगुजिश्त' 1961, (कृष्णचन्द्र), 'टेढ़ी लकीर' 1945, 'मासूम' 1962, (इस्मत चुगताई) तथा बयानात 1975, (जोगिन्दर पाल) आदि उपन्यासों में देखा जा सकता है।

बीसवीं शती के अन्तिम दो दशकों में परिस्थितियाँ तो लगभग पूर्ववत् ही बनी रहीं बल्कि यह कहा जा सकता है कि इस समय आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, नारी की दयनीय स्थिति, दलित-शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार आदि के कारण स्थितियाँ जटिल से जटिलतर होती गईं। स्वामाविक है कि युगीन परिस्थितियों का प्रभाव उपन्यास लेखन पर पड़ा। एक तरह से कहें जो दशकों का उर्दू-उपन्यास-लेखन अपने समकालीन परिवेश का प्रामाणिक दस्तावेज है। विवेच्य दशक के उर्दू-उपन्यास-फलक पर भारतीय एवं पाकिस्तानी उपन्यासकार एक साथ सक्रिय रहे हैं। पाकिस्तानी उपन्यासकारों में इन्तजार हुसैन, अब्दुल्ला हुसैन, खदीजा मस्तूर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारत-विभाजन की त्रासदी ने अन्य भाषा साहित्य के लेखकों की भांति उर्दू एवं पाकिस्तानी साहित्यकारों पर भी गम्भीर प्रभाव डाला। इस त्रासदी ने जहाँ भारतीय उर्दू - लेखकों के सम्मुख एक शून्य की स्थिति और भयावह प्रश्नचिह्न लगा दिए वहीं पाकिस्तान के उर्दू लेखकों पर भी विभाजन का गम्भीर प्रभाव पड़ा। स्वामाविक है, उर्दू-उपन्यास-लेखन भी भारत-विभाजन से प्रभावित रहा है। नवें एवं दसवें दशक के अधिकतर उर्दू-उपन्यास इसी थीम पर लिखे गए हैं और लिखे जा रहे हैं। 'आखिर-ए-शब के हमसफर' 1979-80 'गर्दिशे - रंगे-चमन' 1988, 'चौदनी बेगम' 1990 (कुर्रतुल-ऐन-हैदर), 'दो गज़ जमीन' 1988 (अब्दुस्समद), 'बस्ती' 1980 (इन्तजार हुसैन), 'उदास नस्लें, आंगन' (अब्दुल्ला हुसैन), तथा 'तलाशे बहारा' (जमीला हाशमी) आदि उपन्यास, विभाजन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में विषय बनाकर लिखे गए हैं। इन सभी उपन्यासों पर विभाजन की त्रासदी और उससे उत्पन्न भयावह विभीषिका का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

'कुर्रतुल' के प्रायः सभी उपन्यास भारत विभाजन एवं अतीत की पृष्ठभूमि पर ही लिखे गए हैं लेकिन उनका 'आग का दरिया' उपन्यास बहुत ही चर्चित रहा है। इसमें

भारत के ढाई हजार साल के इतिहास को समेटा गया है। 'आखिर-ए-शब के हमसफर' में ऐतिहासिक अनुभूति एवं सामाजिक चेतना प्रबल रूप से मिलती है। यद्यपि यह उपन्यास केवल 33 वर्षों (1939-72) की छोटी सी अवधि में ही हमारी ऐतिहासिक और सामाजिक परम्पराओं की विशालता को एक पौने दृष्टिकोण से अपने में संजोता है। कहानी 1939 के पूर्वी भारत के एक प्रसिद्ध नगर से प्रारम्भ होती है पर वास्तव में यह पाँच परिवारों (दो हिन्दू, एक मुस्लिम, एक भारतीय ईसाई और एक अंग्रेज) का इतिहास है जो आपस में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस समय के क्रान्तिकारी परिवर्तन ने जनमानस की सामाजिकता, नैतिक मूल्य, आदर्श और उद्देश्य को प्रभावित किया। इन सबका वास्तविक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

'कुर्रतुल' का 'चौदनी बेगम' एक अनोखे अन्दाज़ का उपन्यास है। नॉवेल के नाम से अन्दाज़ होता है कि शुरु से आखिर तक यह चौदनी बेगम की ही दास्तान होगी, मगर वह थोड़ी देर के लिए नमूदार होती हैं फिर मौत के अंधेरों में खो जाती है। इसके बावजूद 'चौदनी बेगम' प्रतीक हैं उस रौशन मीनार की जो दुनिया के अंधेरे में उजाला बिखेर रही है। बेशक यह हक्रीकत ही नहीं, कलाकार की दिली तमन्ना है, इसका ख्याब है। इसी के साथ इसमें 1947 से अब तक के मुस्लिम वर्ग की समस्याओं, जैसे जमीन-जायदाद, पारिवारिक समस्याएँ, हिजरत (अपना देश छोड़कर दूसरे देश में बस जाना), जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, सांस्कृतिक पतन आदि को चित्रित किया गया है।

अब्दुस्समद का उपन्यास 'दो गज़ जमीन' देश-विभाजन के मुद्दे को लेकर लिखा गया है। इसकी पृष्ठभूमि बांग्लादेश और पाकिस्तान है जो भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल जनसमुदाय के एक वर्ग के जीवन, उसकी निष्ठा और जटिल मुद्दे का विश्लेषण करता है। इसमें बिहार के एक गाँव के मुस्लिम परिवार की कहानी कही गई है। इस परिवार में अल्तामू हुसैन और उनके

दामाद अख्तर हुसैन एक ईमानदार और देशभक्त भारतीय हैं। आजादी के बाद उनके अधिकतर रिश्तेदार पाकिस्तान चले जाते हैं। मुस्लिम लीग और कांग्रेसी लीडरों का फायदा उठाकर, मिनिस्ट्री, सरकारी नौकरियाँ तथा कोटे - परमिट लेने में ही पूरी शक्ति लगा देते हैं। बड़े बेटे 'सरवर हुसैन' की मृत्यु ने 'बीवी साहेबा' को विक्षिप्त सा कर दिया है। 'बीवी साहेबा' के प्रस्तुत शब्द पाकिस्तान बनने की पीड़ा को दर्शाते हैं -

“पाकिस्तान....अरे! ओ, नामुराद तू मेरे बच्चे को खा गया, मेरे घराने को तबाह कर दिया। अब मेरी बेटी को तू न खा। खुदा के लिए यहाँ से वापस चला जा। तुझ पर खुदा की मारा मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ पाकिस्तान, अब तू मेरा पीछा छोड़ दे। मैंने तो तेरा कुछ नहीं बिगाड़ा, आखिर तू मुझे कौन से गुनाहों की सज़ा दे रहा है।..... पाकिस्तान ओ पाकिस्तान!”² इस विभाजन ने तो देश के ही नहीं बल्कि दिलों के भी टुकड़े कर दिए थे जिसे कि हम हामिद और मुमानी के संवाद में देख सकते हैं -

“मुमानी इस पूरे देश में कुछ ही तो अपने हैं और उनके बीच भी यह अलगाव देखकर बड़ी तकलीफ होती है। देश के बँटते ही यह तीन टुकड़ों में बँट गया लेकिन इसके साथ ही हमारा घर भी तीन - तेरह - नौ - अठारह हो गया।”³

भारतीय इतिहास में बांग्लादेश का निर्माण एक महत्वपूर्ण घटना थी। इससे जहाँ पूर्वी पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान के आतंक और अत्याचार से मुक्ति मिली वहीं पर पड़ोसी राज्य बिहार के लाखों नागरिकों को अपने प्राण गवाने पड़े। इस दृष्टि से उपन्यास का यह अंश उल्लेखनीय है

“पूर्वी पाकिस्तान का खात्मा कोई साधारण बात न थी। अब वहाँ फँसे हुए कई लाख बिहारियों को कोई भी नहीं बचा सकता, सिर्फ खुदा के। मुसलमानों के साथ एक ऐसा मज़ाक हो गया था जिस पर न वे हँस सकते थे, न रो सकते थे। हारे भी मुसलमान थे, और जीते भी

मुसलमान थे। नब्बे हजार से अधिक सैनिकों ने जगजीत सिंह अरोड़ा के सामने हथियार डाल दिए थे और यह बांग्लादेश के अस्तित्व से अधिक बड़ी - बहुत बड़ी घटना थी।”⁴

विभाजन की त्रासदी का उल्लेख भीष्म साहनी के 'तमस', यशपाल के 'झूठा - सच' (1958-1960), राही मासूम रज़ा के 'आधा गँव' (1966), 'टोपी शुक्ला', मंजूर एहतेशाम के 'सूखा बरगद' (1989), बदीउज़्ज़मा के 'छाको की वापसी' (1985) और नासिरा शर्मा के 'जिन्दा मुहावरे' (1994) आदि उपन्यासों में विशेष रूप से हुआ है।

सन् 1947 के भारत-विभाजन के साथ ही पूरा देश साम्प्रदायिकता की ज्वाला में झुलस रहा था। आजादी की सुबह नफरत, उदासी और दंगे साथ लेकर आयी। बरसों से साथ रहे दोस्तों का दृष्टिकोण भी हिन्दू-मुस्लिम बन गया। संबंधों को मापने का आधार धर्म, संबंध जोड़ने का आधार पूर्णतः धर्मकेन्द्रित मानसिकता को लेकर ही जी रहा था। ऐसे विषम वातावरण में अपने भीतर हो रहे परिवर्तन का अनुभव कर मनुष्य स्वयं ही हैरान हुआ जा रहा था।

'दो गज़ जमीन' के मुख्य पात्र अख्तर हुसैन, बेटे 'हामिद' को अपने देश, परिवार की स्थिति से अवगत कराते हुए, धार्मिक उन्माद के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं.....

“इधर सन् 1946 फिर जिन्दा हो गया है लेकिन दूसरी तरह। पहले लोग पाकिस्तान भागते थे, अब देहातों से भागकर शहर आ जाते हैं। इससे भी बुरी बात है कि अब आबादियों मज़हबी घटनाओं पर बसने लगी हैं। हिन्दुओं के मुहल्ले में मुसलमान बसना कबूल नहीं करता और हिन्दू, मुसलमानों के मुहल्ले में। अब जरा सोचों की अगर हालात यही रहे तो देश कितने टुकड़ों में बँट जायेगा। आज तक तो हम एक ही बँटवारे को लेकर रो रहे थे लेकिन यहाँ जो अनगिनत बँटवारे के बीज बोये जा रहे हैं। क्या-क्या सपने देखे थे हम लोगों ने, क्या और नतीजे देखने को मिल रहे हैं। हाथ मलमलकर रह जाते

हैं लेकिन कर ही क्या सकते हैं... अपने बस में तो कुछ है नहीं....।”⁵

उक्त उपन्यासों के तर्ज पर ‘फरात’। (हुसैन-उल-हक़ 1992), ‘बयान’ (मुसरफ़ आलम जौकी 1995), ‘जो अमा मिली तो कहीं मिली’ (मोहम्मद अलीम 1998), ‘ऑगन’ (हयातउल्ला अंसारी), ‘कितने पाकिस्तान’ (कमलेश्वर 2000) तथा ‘आखिरी कलाम’ (दूधनाथ सिंह) आदि उर्दू और हिन्दी के कतिपय महत्वपूर्ण उपन्यास अन्तिम दो दशकों में आए हैं।

उर्दू कहानी की अपेक्षा, उर्दू उपन्यासों में स्त्री-विमर्श जैसा स्वर कम सुनाई पड़ता है। उर्दू कहानी के प्रारम्भ में ही ऐसी बागी महिला कहानीकार सामने आई जिन्होंने इस क्षेत्र में एक क्रांति-सी मचा दी। कुर्रतुल - ऐन-हैदर ने अपने उपन्यासों में नारी के त्रासदिक जीवन की दुखपूर्ण छवि को अंकित किया है। 1995 में प्रकाशित इनके ‘तीन उपन्यास’ नामक ग्रन्थ को महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। ‘अगले जनम मोहे बिटिया न कीजौ’, ‘दिलरुबा’ और ‘एक लड़की की जिन्दगी’ (सीताहरण) इन तीनों उपन्यासों में आज़ाद भारत के सामाजिक जीवन में नारी-दशा का यथार्थ चित्रण हुआ है।..... ‘अगले जनम मोहे बिटिया न कीजौ’ मामूली नाचने गानेवाली दो बहनों की कहानी है। जो बार-बार मर्दों के छलावों का शिकार होती है। फिर भी यह उपन्यास जागीरदार घरानों के आर्थिक ही नहीं अपितु भावात्मक खोखलेपन को भी जिस तरह से हमारे सामने उभारकर लाता है उसकी मिसाल उर्दू-साहित्य में मिलना मुश्किल है। एक जागीरदार घराने के आगा फरहाद पच्चीस साल के बाद भी ‘रश्के कमर’ को भूल नहीं पाते हैं और उस पर वह उसके लिए धन-दौलत का बन्दोबस्त न करके केवल कुछ गज़लों का बन्दोबस्त करते हैं ताकि “अगर तुम वापस आओ और मुशायरों में मदद किया जाए तो ये गज़लें तुम्हारे काम आएंगी।”⁶ आखिर सब कुछ लुटने के बाद ‘कमर’ के पास बचता है तो बस यही की ‘कुर्ता की तुरपाई की, कुर्ता दस पैसो। उपन्यास का शीर्षक ही हमारे समाज में

औरत के हालात पर एक गहरी चोट करता है। जागीरदारों का युवा वर्ग इनके साथ खूब मीज-मस्ती करता है और जरा-सा आरोप लगने पर ‘आगा फरहाद’ कहते हैं। “इस तबके की छोकरियों के पास ब्लैकमेल का यह सहल नुस्खा है। किसी आए गए कि औलाद किसी मालदार परिचित शनासा के सिर में दू दी।”⁷ ‘रश्के कमर’ भी छोटी अपंग बहन जमीलुन्निसा का चरित्र, उसका धीरज, उसका व्यक्तियों को पहचानने का गुण और हालात का सामना करने का हौसला मन को सराबोर कर जाता है। खोखलेपन और दिखावा - जागीरदार तबके की इस त्रासदी को सामने लाने का काम ‘दिलरुबा’ उपन्यास भी करता है। तीसरा उपन्यास ‘एक लड़की की जिन्दगी’ है जिसे लेखिका के बेहतरीन उपन्यासों में गिना जाता है। यह उपन्यास विभाजन-त्रासदी की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इसमें लेखिका ने एक रिफ्यूजी सिंधी लड़की के जरिए पूरे रिफ्यूजी तबके के दुख दर्द को उभारा है। इन तीनों उपन्यासों की साझी विशेषता यही है कि आज़ादी के बाद हिन्दुस्तानी औरत के हालात को इस तरह उभारकर सामने लाया गया है। कि इनकी कहानियाँ दिल को छू लेती हैं। कुर्रतुल के इन उपन्यासों में स्त्री-विमर्श का नया रूप देखते ही बनता है। उन्होंने गाने-बजाने वाली गरीब तबके, थियेटर में काम करने वाली गुलनार और एक रिफ्यूजी लड़की की दिल हिला देने वाली कहानी कही है। इनमें नारी की शोचनीय स्थिति का वास्तविक चित्रण लेखिका ने किया है लेकिन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया है।

इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुषों के संबंधों को भी उर्दू-उपन्यासों में दर्शाया गया है। मुमताज मुप्ती के ‘अलीपुर का ऐली’ (1992) में स्त्री-पुरुष का आदिकालीन सम्बन्ध, यौन असंतुष्टि और समरति का एहसास भी स्थान-स्थान पर कराता है। केंचुली (गज़नफर 1992) उपन्यास आधुनिक नारी की विकसित सोच को दिखाता है।

हिन्दी में प्रथम आंचलिक उपन्यास ‘मैला आँचल’ (फणीश्वरनाथ रेणु) 1954 में प्रकाशित हुआ जबकि उर्दू

में एक लम्बे समय तक औचलिक उपन्यासों का अभाव खलता है। बीसवीं शती के अन्तिम दशक में ही, उर्दू का प्रथम औचलिक उपन्यास 'फायर एरिया' (इलियास अहमद गद्दी) 1994 में प्रकाशित हुआ। इसमें बिहार के कोयला खानों के मजदूरों की स्थिति को औचलिक भाषा में उकेरा गया है लेकिन फिर भी उर्दू में औचलिक उपन्यासों का अभाव-सा दिखाई देता है।

विवेच्य दशक में उर्दू में मिथकीय और ऐतिहासिक उपन्यासों की एक लम्बी परम्परा मिलती है। ऐतिहासिक उपन्यासकारों में क्राजी अब्दुल सत्तार का नाम सर्वोपरि है। 'सहाउद्दीन अय्यूबी' 1968, 'शिकस्त की आवाज' 1961, 'शबगजीदा' 1966, 'पहला और आखिरी खत' 1967, 'खालिद-बिन वलीद' 1997 और 'गालिब' 1986 आदि उनके उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'गालिब' उपन्यास में 'गालिब' को स्वार्थी एवं अवसरवादी के रूप में चित्रित किया गया है। इसमें उनकी सौन्दर्यप्रियता, शराबनौशी और विलासिता को ज्यादा उजागर किया गया है। लेकिन इसमें मुगल साम्राज्य की समाप्ति और 19वीं शती के परिवेश को यथार्थ रूप से दिखाया गया है। इसके साथ ही जहाँ एक ओर शासकों की विलासिता, दुष्चरित्र मंत्रियों की दगाबाजियां, चरित्रहीन अमीरों की गद्दारियों का जिक्र भी हुआ है वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी शासन में अनुशासन एवं प्रगतिशीलता की खूबियों का भी। प्रस्तुत 'गालिब' उपन्यास में इनको अंग्रेजों का पिट्ठू कहा गया है जो कि अपने स्वार्थ के कारण आजीवन उनकी तरफदारी करता रहा।

कुर्रतुल की भारतीय मिथक शास्त्र में गहरी पैठ रही है। उनका 'आग का दरिया' उपन्यास इस बात का प्रमाण है। 'एक लड़की की जिंदगी' उपन्यास में भी उन्होंने मिथकों का सहारा लिया। 'रामायण', 'यशोधरा' से संबंधित अनेक प्रसंग इसमें बिखरे पड़े हैं। उपेक्षित सीता की स्थिति, यशोधरा की भाँति ही है। यहाँ आधुनिक सीता और जमील के बेटे का नाम भी राहुल है। बुद्ध के जीवन के रूपक को लेखिका ने सीता की नियति से जोड़ा है

लेकिन यशोधरा की अपेक्षा, आधुनिक सीता का जीवन अधिक दुख भरा है, वहाँ राहुल तो यशोधरा के जीने का सहारा है, यहाँ आधुनिक सीता, जीवन भर अपने बेटे राहुल के लिए तड़पती रहती है। इसी तरह 'रामायण' की सीता, आधुनिक सीता की अपेक्षा अधिक भाग्यशाली है। रामायण की सीता को स्थान-स्थान पर आश्रय, प्यार, मदद एवं सहानुभूति तो मिलती है लेकिन आधुनिक सीता तो निराश्रित असहाय ही भटकती रहती है..... भटकती रहती है। भटकना ही उसकी नियति बन जाती है। उपन्यास की ये पंक्तियाँ आधुनिक सीता के दर्द को उजागर करती हैं.... "आप सबकी इत्तला के लिए अर्ज है कि सीता को आज की दुनिया का रावण उड़ाकर ले गया। हज़रत, यह आज की दुनिया जो दो कैंपों में बँटी है, एंग्लो- अमेरिकन साम्राज्य की शिकार की दुनिया जिसमें मासूमों को थर्ड डिग्री किया जाता है तो उन्हें कोई हनुमान बचाने नहीं आता।"⁸

मुस्लिम समाज जागीरदाना समाज रहा है। अतः उर्दू-उपन्यास में इनके शोषण की कहानी भी कही गई है। गद्दी के 'फायर एरिया' और जीलानी बानो के 'बारिश-संग' (1985) में इस शोषण को उभारा गया है। 'बारिश-संग' में तेलंगाना के गाँव 'चेकरपल्ली' के माध्यम से जमींदारों और महाजनों के शोषण की यथार्थ तस्वीर खींची गई है। सलीम एक खेतिहर मजदूर हैं जिसके पूर्वज उस खेत के मालिक थे, महाजनी शिकंजे में फँसने के कारण वह खेत-मालिक से बँधुआ मजदूर बन जाता है।

मौलिक शिल्प प्रयोग की दृष्टि से अन्तिम दशकों का उर्दू उपन्यास महत्त्वपूर्ण रहा है। 'उमरावजान अदा' उपन्यास की सम्पूर्ण कहानी उमरावजान और उपन्यासकार 'रुसवा' के वार्तालाप से प्रारम्भ होकर समाप्त होती है। कुर्रतुल का 'आग का दरिया' शैली शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। जमीला हाशमी कृत 'तलाशे बहारों' में कथानक को स्मृति आधार पर निर्मित किया गया है। और कथानक का क्रमिक विकास, उपन्यास का वैशिष्ट्य कहा जा सकता है। तो 'फायर एरिया' में बिहार की औचलिक भाषा का सौन्दर्य देखते ही बनता है।

उर्दू - उपन्यास के समक्ष एक चिन्ताजनक सवाल यह है कि उर्दू - उपन्यास सिर्फ शहरी समाज, मध्यवर्ग तक सीमित होकर रह गया है। प्रेमचन्द के पश्चात, उर्दू उपन्यासों से गाँव गायब होते जा रहे हैं। अब्दुस्समद के उपन्यास 'दो गज़ ज़मीन' में गाँव है लेकिन अनुभूतिमय यथार्थ नहीं है केवल सतही है। इसके साथ ही उर्दू-उपन्यास में वर्किंग क्लास, आदिवासी और दलित वर्ग के जीवन और उनकी समस्याओं को भी उपन्यास का विषय नहीं बनाया गया।

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में उर्दू का कथा-साहित्य पहले की अपेक्षा काफी समृद्ध हुआ है। इस युग के अधिकांश उर्दू-उपन्यासकार अतीत की ओर उन्मुख दिखाई देते हैं क्योंकि उनका प्रमुख कार्य था - अतीत को याद कर स्वस्थ मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठापित करना। इसके बावजूद उर्दू उपन्यास में जीवन, समाज

तथा देश को नवीन और सार्थक आयाम प्रदान करने के सशक्त प्रयास जारी हैं।.....

सन्दर्भ-सूची

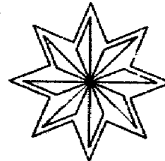
1. अमृतराय : कलम का सिपाही, पृ० 26
2. अब्दुस्समद : दो गज़ ज़मीन, पृ० 166
3. वही : वही, पृ० 182
4. वही : वही, पृ० 163
5. वही : फ्लैप से उद्घृत
6. कुर्रतुल-ऐन-हैदर (मूल लेखिका) :तीन उपन्यास (अगल जनम मोहे बिटिया न कीजौ) लिप्यांतरण : सुरुर अहमद, पृ० 52
7. वही : वही, पृ० 55
8. वही : वही (एक लड़की की जिन्दगी) लिप्यांतरण : मुईन एजाज़, पृ० 204

With Best Compliments from :

Ph. : 0832 - 2740526 (R)
9423312786 (M)

ASSI ENGINEERING

CIVIL CONTRACTOR



CHANDRAWADA FATORDA
MARGAO, GOA

Prop. : C.K. AYOOB